मध्यप्रदेश शासन

मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

श्री शिवराज सिंह चौहान

का

राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक

में संबोधन

दिनांक 29 मई, 2007

राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक

दिनांक 29 मई 2007

आदरणीय प्रधानमंत्री जी
सम्माननीय कृषि मंत्री जी
सम्माननीय ग्रामीण विकास मंत्री जी
सम्माननीय वित्त मंत्री जी
सम्माननीय जल संसाधन मंत्री जी
योजना आयोग के उपाध्यक्ष महोदय
भारत के सभी प्रदेशों के माननीय मुख्यमंत्रीगण
कृषि मंत्रीगण एवं
अन्य सभी उपस्थित अधिकारीगण।

सर्वप्रथम तो मैं माननीय प्रधानमंत्री जी, माननीय कृषि मंत्री जी और भारत सरकार का धन्यवाद करना चाहता हूं कि कृषि की दशा सुधारने के उपायों पर चर्चा हेतु आपने राष्ट्रीय विकास परिषद् की यह बैठक आहूत की है। माननीय कृषि मंत्री जी की अध्यक्षता में गठित राष्ट्रीय विकास परिषद की उपसमिति के प्रतिवेदनों का हमने विशद अध्ययन किया है। कृषि की उत्पादन वृद्धि दर घटने और कृषकों की बढ़ती कठिनाइयों के प्रति इन प्रतिवेदनों में गहरी चिंता जताई गई है, और इनके लिए जिम्मेदार कारणों और कारकों को चिन्हित करने का प्रयास किया गया है। परंतु

बहुत सी मौलिक महत्व की बातें छूट गई प्रतीत होती हैं और जो निदान सुझाये गये हैं वे ठोस व समग्र न होकर आधे-अधूरे हैं। मैं आप सभी का ध्यान उनकी ओर आकर्षित करना अपना कर्तव्य मानता हूं।

2. सर्वप्रथम तो मैं स्मरण कराना चाहता हूं कि पिछले 15-16 वर्षों में औद्योगीकरण, शहरीकरण और सेवा के क्षेत्रों में हुई प्रगति के कारण भारत की अर्थव्यवस्था में जो गति आई है, वह एकांगी होकर रह गई है। इस प्रगति का लाभ हमारी जनसंख्या के बड़े भाग को नहीं मिल पाया है, विशेषकर ग्रामीण और गरीब समुदाय को। अभी भी देश की लगभग 65 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आधारित है। समस्त कार्यबल का 56.7 प्रतिशत कृषि में रोजगार पाता है। सकल घरेलू उत्पाद में 20 प्रतिशत और निर्यात में लगभग 11 प्रतिशत योगदान कृषि का है। देश की संपूर्ण खाद्य आवश्यकता तथा महत्वपूर्ण उद्योगों का सारा कच्चा माल कृषि क्षेत्र पैदा करता है। औद्योगिक क्षेत्र के उत्पादों की 40 प्रतिशत से अधिक मांग ग्रामीण जनों की क्रय शक्ति के ऊपर निर्भर है। कृषि उत्पादों, विशेषतः खाद्य पदार्थों के उत्पादन और कीमतों में जो उतार-चढ़ाव होता है, उसका सीधा प्रभाव सामान्य मूल्य स्तर अर्थात् मुद्रा स्फीति पर होता है। अतः कृषि क्षेत्र में होने वाली किसी भी घटना से देश की पूरी अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है।

3. हरित क्रांति की सफलता के बाद भी बहुत सी कठिनाइयों और बाधाओं से जूझना पड़ रहा है। इन्हीं की चर्चा संक्षेप में करना चाहूंगा। सबसे

पहले तो मैं कुछ आंकड़ों के भ्रामक प्रस्तुतीकरण की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा। कृषि के ऊपर निर्भर जनसंख्या, जो आजादी के समय 75 प्रतिशत थी, अब घटकर 65 प्रतिशत रह गई है। सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान 61 प्रतिशत से कम होकर 20 प्रतिशत के आसपास आ गया है। इन दोनों सूचकों को अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण और प्रगति की स्वाभाविक परिणिति और द्योतक माना जाता है। परंतु वास्तविकता यह है कि आजादी के समय देश की जनसंख्या केवल 36 करोड़ थी और उसका तीन-चौथाई अर्थात् 27 करोड़ खेती पर निर्भर था। अब देश की जनसंख्या 110 करोड़ हो चुकी है जिसका 65 प्रतिशत यानी लगभग 71 करोड़ से अधिक लोग खेती पर निर्भर करते हैं। दूसरा इतना ही महत्वपूर्ण पक्ष है कि पहले देश की 75 प्रतिशत जनसंख्या के हिस्से में राष्ट्रीय आय का 61 प्रतिशत आता था, लेकिन अब 65 प्रतिशत जनता को 20 प्रतिशत से कम पर गुजारा करना पड़ रहा है। कृषि भूमि पर सतत दबाव बढ़ा है। औसत जोत का आकार घटा है। लगभग 78 प्रतिशत जोतें दो हेक्टेयर से छोटी हैं, जो आर्थिक इकाई के रूप में सर्वथा अलाभकर हैं। कृषि भूमि की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 0.36 हेक्टेयर से घटकर 0.12 हेक्टेयर के करीब हो गई है। खेती में लगे प्रति व्यक्ति की औसत आय और अन्य व्यवसायों में लगे लोगों के प्रति व्यक्ति आय का अंतर जो 60 के दशक तक लगभग 1 : 2 था, बढ़कर 1 : 11 के आसपास हो गया है।

4. सबसे भयावह स्थिति वर्षा आधारित क्षेत्रों की है जिनमें कृषि योग्य भूमि का 60 प्रतिशत भाग आता है। इन क्षेत्रों का प्रति हेक्टेयर उत्पादन एक टन के आसपास अटका हुआ है। ग्रामीण गरीबों का 80 प्रतिशत इन्हीं क्षेत्रों में बसता है। हरित क्रांति की चमक-दमक भी फीकी पड़नी शुरू हो गई। कृषि की लागत उत्पादकता के अनुपात में तेज गति से बढ़ी है और खेती लगातार घाटे का सौदा होती जा रही है। भूमि के अति दोहन से उसकी उर्वरा शक्ति घट रही है। जल तथा कृषि रसायनों के अंधाधुंध उपयोग से पर्यावरण और मानव सहित सभी जीव-जंतुओं का स्वास्थ्य दुष्प्रभावित हो रहा है। उर्वरकों के असंतुलित उपयोग और जैविक पदार्थों की कमी के कारण जिंक, लौह, गंधक, मैंगनीज, बोरोन, मालिबडिनम जैसे महत्वपूर्ण पोषक तत्वों का भारी अभाव हो गया है। संपूर्ण खाद्य श्रृंखला में विषैले तत्वों के अवशेष भारी मात्रा में पाये जाते हैं। सभी जीवों और वनस्पतियों की नैसर्गिक प्रतिरोध शक्ति का ह्रास होता जा रहा है। अनेकों भयंकर और असाध्य रोगों की संख्या बढ़ रही है और आम आदमी की आमदनी का बड़ा भाग चिकित्सा व्यय में जाने लगा है।

5. किसान विरोधी मूल्य नीति ने किसान की कठिनाइयों को और जटिल बनाया है। स्वतंत्रता के बाद भी कृषि मूल्य नीति के निर्धारक तत्व प्राय: वही रहे हैं जो औपनिवेशिक काल में थे। सरकार का अक्सर यही प्रयास रहा है कि मुखर शहरी जनता, संगठित औद्योगिक श्रमिकों और उद्योगपतियों को खुश रखने तथा लाभ पहुंचाने की दृष्टि से खाद्य पदार्थों के मूल्य दबाकर रखे जायं। मूल्य समर्थन प्रणाली के प्रादुर्भाव से

किसानों को कुछ राहत अवश्य मिली थी। परंतु कालांतर में वह भी निष्प्रभावी हो गई है। सापेक्ष मूल्य दरों की ऐतिहासिक गति पर दृष्टिपात करें तो पायेंगे कि 1960-61 के आधार वर्ष से अब तक कृषि के सापेक्ष मूल्य 82 प्रतिशत से 95 प्रतिशत के बीच रहे हैं। इसके फलस्वरूप देश के किसानों को प्रतिवर्ष 12 से 15 प्रतिशत का आर्थिक घाटा उठाना पड़ा है। दूसरे शब्दों में कहें तो किसानों की आय का इतना भाग दूसरे लोगों की जेब में जाता रहा है। इस के बावजूद कुछ जाने-माने नीति निर्धारक और अर्थशास्त्री कृषि पर आयकर लगाने की बात करते रहते हैं।

6. कृषि क्षेत्र में पूंजी विनिर्माण की दर भी घटती आ रही है। 1970 के दशक में देश के सकल पूंजी विनिर्माण का 21 प्रतिशत खेती में होता था जो सम्प्रति घटकर 8 प्रतिशत से भी कम रह गया है। सार्वजनिक क्षेत्र में तो पूंजी विनिर्माण की दर इसी अंतराल में 18 प्रतिशत से घटकर केवल 4.2 प्रतिशत हो गई है। पिछले तीन दशकों में योजना के लिये आवंटित राशि का भी केवल 5 प्रतिशत से कम कृषि और संबंधित गतिविधियों के लिये दिया गया है, जिसमें वन भी सम्मिलित है। खेती में निवेश की दर भी इस दौरान सकल घरेलू उत्पाद के 1.3 प्रतिशत के बराबर रही है और सार्वजनिक निवेश तो मात्र 0.3 प्रतिशत। यदि खेती के ऊपर निर्भर जनसंख्या (65 प्रतिशत), रोजगार का प्रतिशत (57 प्रतिशत) तथा सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान (औसत 25 प्रतिशत) और अर्थव्यवस्था के कुल निवेश (औसत 26 प्रतिशत) को देखा जाय तो कृषि के हिस्से में क्रमशः 18 प्रतिशत, 15 प्रतिशत और

न्यूनतम 6.5 प्रतिशत निवेश आना चाहिए था। मिला केवल 1.3 प्रतिशत।

7. कृषि को प्राथमिकता का क्षेत्र मानकर रिजर्व बैंक द्वारा सभी बैंकों को लगभग दो दशकों से यह निर्देश हैं कि अपने कुल ऋण का न्यूनतम 18 प्रतिशत वे कृषि ऋण के रूप में दें। परंतु वास्तव में वह 12 से 14 प्रतिशत के बीच रहा है। बैंकों की सभी ग्रामीण शाखाओं का ऋण और जमा का अनुपात (C:D Ratio) 30 प्रतिशत के आसपास है। इसका सीधा अर्थ है कि बैंकिंग प्रणाली ग्रामीणजनों द्वारा जमा की गई कुल राशि का केवल 30 फीसदी गांवों में ऋण के रूप में देती है और 70 प्रतिशत भाग गांवों से निकालकर दूसरे क्षेत्रों के विकास के लिये उपलब्ध कराती है। अर्थात् बैंक गांवों में पूंजी लगाने के बजाय ग्रामीणों द्वारा अर्जित पूंजी का अधिकांश (70 प्रतिशत) भाग बाहर ले जाते हैं। ये सरकारी आंकड़े इस बात के जीते-जागते प्रमाण हैं कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था पूंजी के भयंकर अभाव से ग्रस्त है।

8. खेती के विकास के लिये आवश्यक मूलभूत सुविधाओं और आधारभूत ढांचे का भी अपेक्षित विकास नहीं हुआ है। बहुत बड़ी संख्या में गांव अभी भी सड़क, बिजली, स्वच्छ पेयजल, शिक्षा, स्वास्थ्य, पशु चिकित्सा सेवाओं, भंडारण और विपणन की सुविधाओं से वंचित हैं। सबसे अधिक चिंता की बात यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी, खासकर शिक्षित युवकों की बेरोजगारी, तेज गति से बढ़ती जा रही है, जिसके कारण ग्रामीण क्षेत्रों

में हताशा, हिंसा और अपराध बढ़ रहे हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षणों की हाल की रिपोर्टों में ये तथ्य उजागर हुए हैं।

9. प्रारंभिक चार पंचवर्षीय योजनाओं के बाद सिंचाई की भारी उपेक्षा हुई। केंद्र सरकार ने तो कृषि में निवेश प्राय: बंद ही कर दिया है। थोड़ी सी राहत त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम AIBP से देने की बात कही गई। परंतु AIBP की समस्त राशि राज्य सरकारों को ऋण के रूप में दी जाती थी। वह भी बैंकों की वाणिज्यिक दर से डेढ़-दो प्रतिशत अधिक पर। राष्ट्रीय गठबंधन की सरकार ने इस राशि का 25 प्रतिशत अनुदान के रूप में देने और ब्याज दर घटाने का निर्णय किया। वर्तमान वित्त वर्ष के बजट भाषण में तो केंद्रीय वित्त मंत्री जी ने इस मद में 11,000 करोड़ रुपये का प्रावधान करने की बात कही और मीडिया ने भी उसको इसी रूप में प्रचारित-प्रसारित किया। वास्तविकता यह है कि केंद्र का अंश तो इसमें केवल 3,580 करोड़ रुपये है। वित्तीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंधन अधिनियम (FRBM Act) पारित किये जाने के बाद राज्य सरकारों की ऋण लेने की क्षमता वैधानिक रूप से सीमित हो गई है। AIBP के लिये सिंचाई परियोजना की अर्हता के जो नियम और प्रक्रियाएं केन्द्र सरकार ने तय कर रखे हैं उनके रहते भी राज्य सरकारों को इसका लाभ नहीं मिल पाता। मध्य प्रदेश का ही उदाहरण लें तो हमारे पास सिंचाई की चालू परियोजनाओं की संख्या अब न के बराबर रह गई है। नई परियोजनाओं के लिये ये राशियां उपलब्ध नहीं हैं। अत: मध्य प्रदेश जैसा राज्य तो इसका लाभ लेने की स्थिति में ही नहीं है। इन्हीं कारणों

से गत वर्ष तो AIBP के लिये आवंटित 2,350 करोड़ में से केवल 1600 करोड़ के लगभग ही उपयोग हो पाया।

10. ऐसा ही भ्रामक प्रचार ग्रामीण अधोसंरचना विकास कोष (RIDF) के विषय में किया जाता है। वित्त मंत्री जी ने इसे भी अपने बजट भाषण में स्थान दिया। वास्तविकता यह है कि RIDF का केंद्र सरकार और उसके बजट से कोई लेना-देना नहीं है। इस कोष में तो बैंकों द्वारा वह राशि नाबार्ड को दी जाती है जो कृषि क्षेत्र को प्राथमिकता के आधार पर निर्दिष्ट 18 प्रतिशत से कम रह जाती है। राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) इन राशियों को बढ़ी हुई ब्याज दर पर राज्य सरकारों को राजकीय गारंटी के आधार पर कर्ज के रूप में देता है। आश्चर्य यह है कि किसी मंच से इस भ्रमपूर्ण स्थिति का निराकरण करने का प्रयास नहीं हुआ।

11. केन्द्र सरकार की नैवेशिक प्राथमिकताएं कितनी सही हैं इसका दिग्दर्शन इस बात से होता है कि पिछले डेढ़ दशक में केन्द्र सरकार ने लगभग 2 लाख करोड़ रुपये केन्द्रीय योजना के तहत संचार व्यवस्था के विकास में लगाया है। लगभग इतनी ही राशि उर्वरकों को दी जाने वाली त्रुटिपूर्ण सबसिडी प्रणाली के तहत व्यय किया। मेरे यह कहते ही प्रश्न उठाया जाना स्वाभाविक है कि क्या संचार व्यवस्था का विकास नहीं होना चाहिए? मैं स्पष्ट करना चाहता हूँ हमारा ऐसा कोई मंतव्य नहीं है । परन्तु इस संदर्भ में दो बातें विचारणीय हैं। एक तो यह कि संचार व्यवस्था का विकास करने के लिये निजी क्षेत्र की कंपनियां सदैव तत्पर रही हैं।

यदि पूरी नहीं तो कम से कम इसकी आधी राशि तो ये कंपनियां निवेशित कर सकती थीं। सेवाओं की गुणवत्ता भी निजी कंपनियों की बेहतर मानी जाती है। दूसरे, यह कि गाँवों के लिये पेयजल और फसलों के लिये सिंचाई के जल संसाधनों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए अथवा टेलिफोन और कम्प्यूटर को। देश में हजारों ऐसे गाँव हैं जिनमें एक या दो टेलिफ्रोन से काम चल सकता था। वहाँ कई-कई दर्जन फोन कनेक्शन हैं। परन्तु पीने का पानी कई-कई किलोमीटर से लाना पड़ता है। उर्वरक पर दी जाने वाली सबसिडी का लगभग 60 प्रतिशत कंपनियों की जेबों में जाता है और केवल 40 प्रतिशत किसान तक पहुँचता है। यूरिया आदि नत्रजनीय उर्वरकों का तो अपव्यय इतना होता है कि 40 प्रतिशत मात्रा व्यर्थ हो जाती है। यदि किसानों को प्रशिक्षित किया जाय कि वे यूरिया को पानी में घोलकर स्प्रे करें तो वर्तमान की अपेक्षा कुल 10 से 15 प्रतिशत मात्रा से काम चल सकता है। दुर्भाग्य से नीति निर्धारकों का ध्यान इस दिशा में नहीं जा पाया है। निहित स्वार्थों की अपनी भूमिका भी इसमें रही है।

12. कुछ वर्षों तक गेहूँ, चावल और गन्ने के अच्छे उत्पादन के कारण केन्द्रीय खाद्य भण्डार में जो स्टॉक जमा हो गये थे, उनके कारण हम खुशफहमी में जीने लगे थे। इस स्थिति को इन वस्तुओं के ऊंचे समर्थन मूल्यों का परिणाम मान बैठे थे। नतीजा सामने है। इन दो वर्षों में हमें गेहूँ का आयात करना पड़ा है। विडम्बना यह है कि हम अपने किसान को तो 750 रुपया प्रति क्विन्टल भी देने को तैयार नहीं थे और विदेशों से

मंगाया 1100 रुपये प्रति क्विन्टल। वह भी घटिया किस्म का, अनेकों खरपतवारों से अपमिश्रित गेहूँ । इस वर्ष जरूर आपने 850 रुपये प्रति क्विन्टल देकर कुछ राहत प्रदान की है। खाद्य तेलों और दालों का तो हम सतत् आयात करते ही रहे हैं। मान्यवरो, खाद्य सुरक्षा सीधे राष्ट्र की सुरक्षा से जुड़ी हुई है। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में खाद्य पदार्थों को हथियार के रूप में इस्तेमाल किये जाने की घटनाओं से आप अपरिचित नहीं हैं। यही कारण है कि जापान जैसा समर्थ देश भी अपनी खाद्य सुरक्षा के लिये किसी और के ऊपर निर्भर नहीं रहना चाहता। अतः आयात के भरोसे रहना खतरे से खाली नहीं।

13. विश्व व्यापार संगठन समझौते पर 1994 में हस्ताक्षर करने के समय अमीर देशों का OECD क्लब अपनी कृषि के सकल उत्पाद का लगभग 44 प्रतिशत अनुदान के रूप में देता था। एक समय यह राशि 361 बिलियन अमेरिकी डालर थी। उस साल भारत की कुल राष्ट्रीय आय 447 बिलियन अमेरिकी डालर थी। यानी हमारी कुल राष्ट्रीय आय का 80 प्रतिशत से अधिक तो ये देश कृषि अनुदान के रूप में देते थे। इसे घटाये जाने के सारे वायदे और प्रयास अभी तक तो निष्फल रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में भारतीय किसान अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में कैसे प्रतिस्पर्धा कर सकता है ? यही बात सैनिटरी और फाइटो सैनिटरी मानकों के विषय में है। आपने तो विदेश से आयातित गेहूँ के लिये ये मानक शिथिल कर दिये। परन्तु क्या इसी प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा हम किसी अमीर देश

से कर सकते हैं? कदापि नहीं। ऐसी अनेक घटनायें हैं जब मामूली सी बात पर उन्होंने हमारी निर्यात खेपों को अस्वीकृत कर दिया।

14. खाद्य सुरक्षा के लिये पर्याप्त उत्पादन कर लेना ही काफी नहीं है। राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को खाद्यान्न उपलब्ध होना चाहिए। हमारी सार्वजनिक वितरण प्रणाली की खामियों से हम सब अवगत हैं। इसको नया स्वरूप देने की आवश्यकता है। परन्तु यह भी स्थायी हल नहीं है। अंततोगत्वा तो प्रत्येक व्यक्ति के पास आजिविका और आय का इतना साधन होना चाहिये कि वह अपनी क्रय शक्ति से खाद्यान्न खरीद सके और सम्मानपूर्वक रह सके।

15. आपके प्रतिवेदनों में एकल फसल प्रणाली, सिंचाई के पानी का अपव्ययपरक उपयोग और जैव विविधता के ह्रास आदि के प्रति एक ओर तो चिंता प्रकट की गई है और दूसरी ओर जैव प्रौद्योगिकी और आनुवंशिकी अभियांत्रिकी आदि के माध्यम से संकरित जातियों के पौधे व बीज विकसित करने पर जोर दिया है। दोनों में स्पष्ट रूप से विरोधाभास है। यह विवाद का विषय हो सकता है। इसकी चर्चा में जाकर मैं आपका समय नहीं लेना चाहता। परन्तु इतना सत्य है कि प्रकृति, पर्यावरण और मानव सहित जीव जन्तुओं के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दीर्घकालिक दुष्प्रभावों का समुचित अध्ययन किये बिना इस दिशा में प्रवृत्त होना खतरे से खाली नहीं है। सूचना है कि मटर, टमाटर, बैंगन, भिण्डी आदि सब्जियों में बी.टी. जैसे विषैले जीन को आरोपित करने की अनुमति देने पर विचार किया जा रहा

है। मानव स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ करने का यह क्रम बंद होना चाहिए। ऐसे विषयों पर केन्द्र द्वारा राज्य सरकारों और देश की आम जनता की सहमति के बिना एक-पक्षीय निर्णय लिया जाना लोकतंत्र की भावना के भी विपरीत है।

16. जब भी कभी सिंचाई और कृषि जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों के विकास, निवेश, मूल्य और प्रबंधन आदि की बात आती है तो केन्द्र सरकार यह कहकर पल्ला झाड़ने की कोशिश करती है कि ये तो राज्यों के विषय हैं। परन्तु राज्यों से करों के रूप में एकत्रित की गई विशाल धन राशियों के आवंटन की प्राथमिकता, कृषि उत्पादों की लागत और मूल्य व्यवस्था, चीनी सरीखे महत्वपूर्ण उद्योगों की लाइसेंस पद्धति और आयात-निर्यात संबंधी फैसले करते समय राज्य सरकारों को विश्वास में नहीं लिया जाता है।

कृषि से जुड़े अन्य भी कई पहलू हैं। परन्तु उन सब में न जाकर मैं संक्षेप में कुछ सुझाव राष्ट्रीय विकास परिषद के समक्ष प्रस्तुत करना चाहता हूँ:

एक. कृषि में न्यूनतम निवेश राष्ट्रीय आय के 7 प्रतिशत के बराबर होना चाहिए।

दो. कृषि उत्पादों की मूल्य नीति की भी नये सिरे से समीक्षा करना जरूरी है। कृषि लागत एवं मूल्य आयोग द्वारा अपनाई गई लागत आंकलन प्रणाली सर्वथा त्रुटिपूर्ण है और भेदभावपूर्ण भी । भारत के टैरिफ कमीशन (TC) और औद्योगिकी लागत एवं मूल्य ब्यूरो (BICP) द्वारा अपनाये गये फार्मूले के आधार पर ही खेती की लागत का हिसाब लगाया जाना चाहिये।

व्यपार दरों की ऐतिहासिक विकृति को दूर किया जाना चाहिये।

तीन. कृषि जोत के आकार को और अधिक घटने से रोकने के लिये आवश्यक है कि कृषि पर जनसंख्या की निर्भरता कम हो। ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीकी और व्यावासायिक शिक्षा के माध्यम से कृषि से इतर रोजगारों के अवसर निर्माण करने की एक समयबद्ध समेकित योजना अविलम्ब बननी चाहिए। उसी से यह संभव है।

चार. देश की संपूर्ण सिंचाई संभाव्यता का उपयोग करने के लिये एक 10 वर्षीय नीति बननी चाहिए और उसके लिये आवश्यक धनराशि लगभग 4 लाख करोड़ रुपये में से आधा केन्द्र सरकार और आधा राज्य सरकारों को लगाना चाहिये। यह राशि संचार व्यवस्था में सरकारी निवेश को आधा कर और उर्वरकों की सबसिडी को तर्कसंगत बनाकर निकाली जा सकती है। सिंचाई की वर्षा जल ग्रहण क्षेत्र विकास (watershed management) सहित सभी विधाओं और परियोजनाओं को सीधे जल संसाधन मंत्रालय के अधिकार में देकर एक समेकित योजना के अनुसार क्रियान्वित करने का निर्णय लिया जाय। हमने पहले भी कहा था, फिर दोहराते हैं, कि ग्यारहवीं और बारहवीं योजनाओं को भारत की जल योजनाएं घोषित किया जाय। AIBP कार्यक्रमों के अंतर्गत केन्द्रांश और राज्यांश समान यानी 50-50 प्रतिशत होना चाहिए।

पाँच. सिंचाई की स्प्रिन्कलर और ड्रिप जैसी पद्धतियों को प्रोत्साहित करने के लिये वर्तमान सबसिडी व्यवस्था और राशियां आधे-अधूरे प्रयास हैं। बेहतर

होगा कि इन प्रणालियों में इस्तेमाल की जाने वाली सभी वस्तुओं एवं यंत्रों पर लगे सभी प्रकार के टैक्स समाप्त कर दिये जायं और सबसिडी भी समाप्त कर दी जाय। एक तरफ टैक्स वसूलने के लिये कर प्रशासन की फौज जुटी रहती है और दूसरी ओर सबसिडी देने के लिये। इस दोहरे निष्फल आयाम का कोई अर्थ नहीं है। इन प्रणालियों के लिये आवश्यक ऊर्जा की आपूर्ति सुनिश्चित करना भी अपरिहार्य है।

छः. खेती की लागत कम करने के लिये शहरों, गांवों और खेतों में उपलब्ध कूड़े-कचरे से बने कम्पोस्ट आदि के प्रयोग प्रोत्साहित किये जाने चाहिये। फसल बीमारी की रोकथाम के लिये जैविक नियंत्रण पर बल दिया जाय। ताकि रासायनिक पदार्थों का प्रयोग कम हो।

सात. बैंकों द्वारा दिये गये ऋण पर ब्याज की दर कम किया जाना आवश्यक है। ऋणग्रस्त किसानों को राहत देने के लिए एक राष्ट्रव्यापी ऋण समाधान योजना भी बननी चाहिए।

आठ. अस्वस्थ अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा से भारतीय किसान की रक्षा करने के लिये कृषि उत्पादों पर लगाये जाने वाले तट करों की राशियां अमीर देशों द्वारा कृषि पदार्थों पर दी जाने वाली समस्त अनुदान राशि के अनुरूप होनी चाहिए। इस आशय का एक कानूनी संकल्प संसद में पारित किया जाना चाहिए कि जब तक अमीर देश अपनी अनुदान राशियां वांछित मात्रा में कम नहीं करते तब तक भारत भी अपनी कृषि की रक्षा के लिये तट करों का भरपूर उपयोग करेगा। उसमें यह भी प्रावधान हो कि भविष्य में

भारतीय संसद तथा विधान सभाओं के बहुमत से ही विदेशों से इस आशय के संशोधनात्मक करार किये जा सकेंगे।

नौ. प्राकृतिक आपदाओं और मूल्यों के उतार-चढ़ाव से किसानों की रक्षा के लिए कृषि बीमा योजना भी किसान को इकाई मानकर बनाई जाना चाहिए।

दस. कृषि के लिये केंद्र प्रवर्तित योजनाओं की संख्या अनावश्यक रूप से अधिक है। बेहतर होगा कि प्रत्येक राज्य से उसकी परिस्थितियों के अनुसार एक समेकित योजना लेकर उसके लिए केन्द्र की एकमुश्त राशि आवंटित की जाए।

ग्यारह. कृषि की अनुसंधान व्यवस्था को सुधारने और उसे राज्य की विशिष्ट परिस्थितियों के अनुकूल बनाये जाने के लिये राज्यों में स्थित प्रत्येक कृषि विश्वविद्यालय को 100 करोड़ रुपये केंद्र द्वारा एकमुश्त अनुदान दिया जाना चाहिए।

बारह. कृषि विस्तार सुविधाओं को जब तक केंद्र सरकार का समर्थन मिलता रहा वे सुचारु रूप से चलती रहीं। उसे पुन: प्रारंभ किया जाना चाहिए। इतनी बड़ी सेवा का संचालन राज्यों के अपने बूते की बात नहीं है।

तेरह. कृषि के विविधीकरण और समेकीकरण के लिए आवश्यक है कि बागवानी, पुष्पों और औषधीय पौधों की खेती के लिए केन्द्र से भरपूर अनुदान दिया जाय।

चौदह. कृषि वानिकी कृषि के विविधीकरण का एक महत्वपूर्ण आयाम है। परन्तु किसानों द्वारा उगाये वृक्षों तथा पुराने फलोद्यानों के काटने पर वन कानून के तहत प्रतिबन्ध है, जो अन्यायपूर्ण है। इसे तत्काल हटाकर कृषि वानिकी को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।

पन्द्रह. देश की पशु सम्पदा के संवर्धन के लिये अभी तक पर्याप्त प्रयास नहीं हुआ है। इसमें अधिक निवेश की आवश्यकता है जो राज्य सरकारें अकेले करने में असमर्थ हैं। देशी नस्लों के अनुरक्षण मात्र से काम नहीं चलेगा। उनके चयनित संवर्धन की केंद्र पोषित योजना बनायी जाना आवश्यक है।

आशा है इन सुझावों पर गंभीरता से विचार करेंगे। हमें अपनी बात कहने का अवसर दिया, इसके लिये धन्यवाद।

शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश